International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 391-393

महाभाष्य में कर्म के त्रिविध भेदों की विवेचना

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, के0ए0 (पी जी) कॉलेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

शोध पत्र में विश्लेषण के इस क्रम में पतंजलि ने पाणिनि के 'कर्मण्यण' (अष्टा0–3–2–1) सूत्र पर कर्म के स्वरूप एवं उसके त्रिविध भेदों की गहन विवेचना प्रस्तुत की है। यह शोध पत्र उसको समझने का एक संक्षिप्त प्रयास है।

मूल शब्दः महाभाष्य, विश्लेषण, पतंजलि।

प्रस्तावना

संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि, कात्यायन एवं पंतजलि की 'त्रिमुनि व्याकरण' की संज्ञा प्रसिद्ध है। पाणिनि ने सूत्रों की तथा कात्यायन ने वार्त्तिकों की रचना की है। उन सूत्रों एवं वार्त्तिकों को आधार बनाकर पतंजलि ने महाभाष्य का प्रणयन किया है। अपने इस विशाल ग्रन्थ में उन्होंने भाषाविषयक अनेक गूढ़विषयों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है।

विश्लेषण के इस क्रम में पतंजलि ने पाणिनि के 'कर्मण्यण' (अष्टा0–3–2–1) सूत्र पर कर्म के स्वरूप एवं उसके त्रिविध भेदों की गहन विवेचना प्रस्तुत की है। यह शोध पत्र उसको समझने का एक संक्षिप्त प्रयास है।

कर्मणि निर्वर्त्यमानविक्रियमाण इति वक्तव्यम्। महा0 3–2–1

'कर्मण्यण्'[1] सूत्र से 'कर्म' उपपद रहते धातु से 'अण्' प्रत्यय का विधान किया गया है। वह 'कर्म' तीन प्रकार का होता है, क– निर्वर्त्य ख– विकार्य ग– प्राप्य । पतंजलि प्रकृतसूत्र के भाष्य का प्रारम्भ यह बताते हुये करते हैं कि उक्त तीनों में से किस अर्थ के वाचक कर्मपद से 'अण्' प्रत्यय होना चाहिए? इसके उत्तर में कहा गया है कि निर्वर्त्यमाण तथा विक्रियमाण कर्म के वाचक पद के उपपद रहते 'अण्' प्रत्यय हो यह कथन करना चाहिए। निर्वर्त्यमान का अर्थ निर्वर्त्य अर्थवाला तथा विक्रियमाण का अर्थ विकार्य अर्थवाला है अतः दोनों पद 'कर्म' अथवा कर्मवाचक पद के विशेषण है।

तीन में से दो अर्थों में नियमन तृतीय 'प्राप्य' अर्थ में 'अण्' न हो एतदर्थ किया गया है। महाभाष्यकार ने तदर्थवाचक 'आदित्यं पश्यति' हिमवन्तं श्रृणोति', 'ग्रामं गच्छति' आदि उदाहरणों में 'अण्' न हो इसका उल्लेख स्वयं किया है।[2]

कैय्यट ने अपनी व्याख्या में 'निर्वर्त्य' अर्थ को सुस्पष्ट करने के लिए भर्तृहरि की कारिका को उद्धृत किया है। निर्वर्त्य अर्थ को बताने वाली कारिका है––

सती वाऽविद्यमाना वा प्रकृतिः परिणामिनी।
यस्य नाश्रीयते तस्य निर्वर्त्यत्वं प्रचक्षते।।[3]

जिस कर्म की परिणामिनी प्रकृति का अविद्यमान अथवा विद्यमान होते हुये भी उसका आश्रयण या विवक्षण नहीं किया जाता है उसे 'निर्वर्त्य' कर्म कहते है। इस आधार पर 'निर्वर्त्य'कर्म को कैय्यट ने सोदाहरण व्याख्यायित किया है। जिस कर्म का उपादान–कारण नहीं है, वह 'निर्वर्त्य' होता है। उदाहरणस्वरूप – संयोगं करोति।[4] जिसका उपादानकारण विद्यमान होने पर भी विवक्षित नहीं होता है, वह भी 'निर्वर्त्य' कर्म कहलाता है। यथा – घटं करोति।[5] जब उपादानकारण ही परिणामी के रूप में विवक्षित किया जाता है जैसे– मृदं घटं करोति तब वह 'विकार्य' कर्म कहलाता है।[6] यहाँ 'मृद्' एवं 'घट' अभिन्नरूप से विवक्षित हैं । जब उपादानकारण भिन्नरूप से विवक्षित होता है तब वह 'निर्वर्त्य' कर्म ही माना जाता है।[7] उदाहरण के लिए 'मृदा घटं करोति' यहाँ 'मृद्' उपादानकारण को 'घट' से भिन्न करणरूप में विवक्षित किया गया है। कैय्यट ने विकार्य कर्म को द्विविध बताया है। उसका स्वरूप व प्रकार भर्तृहरि ने सोदाहरण अपनी तद्विषयक कारिका में वर्णित किया है। कैय्यट ने वह कारिका उद्धृत की है।

प्रकृत्युच्छेदसंभूतं किंचित्काष्ठादिभस्मवत्।
किंचिद्गुणान्तरोत्पत्या सुवर्णादिविकारवत्।।

जो 'कर्म' प्रकृति के उच्छेद या विनाश से उत्पन्न होते हैं उन्हें विकार्य कर्म कहते हैं। यह विकार कभी प्रकृतिविनाशरूप 'काष्ठानि भस्मं करोति' में तथा कभी 'सुवर्णं कुण्डलं करोति' में प्रकृतिगुणान्तररूप से प्राप्त होता है। शिवरामेन्द्र सरस्वती ने निर्वर्त्य कर्म व विकार्य कर्म की व्युत्पत्तिपुरस्सर उदाहरण द्वारा व्याख्या की है। उनके अनुसार 'निर्वर्त्यते निष्पाद्यत इति निर्वर्त्यम्' जो उत्पाद्य होता है यथा – 'कुम्भं करोति' में कुम्भादि निर्वर्त्य कर्म है। इसीप्रकार 'विक्रियते विकारात्मकतां प्राप्यत इति विकार्यम्' के अनुसार 'स्वर्णं करोति' में स्वर्णादि विकार्य कर्म के उदाहरण हैं। शिवरामेन्द्र का विकार्यकर्म के विषय में यह कथन है कि विकाररूप फलोत्पत्ति में भी अवयव की अर्थानुगति बनी रहती है।[8] 'स्वर्ण' प्रकृति में गुणान्तराधानरूप विकृतिवाच्य होने पर भी प्रकृति 'स्वर्ण' की प्रतीति होती ही है यह तात्पर्य है। शिवरामेन्द्र दो अन्य उदाहरणों के द्वारा इसे और बोधगम्य बनाते हैं। 'भेरीमाहन्ति, वीणां वादयति' इत्यादि में भी भेरी व वीणा आदि को ध्वनिविशेष से युक्त होना विकार्यत्मकता है।[9]

शिवरामेन्द्र ने अपनी इस व्याख्या के आधार पर कैय्यट की उपरोक्त व्याख्या का खण्डन कर दिया है।[10] इसका कारण स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि परिणामिनी प्रकृति मृदादि का आश्रयण किए जाने पर भी घटादि का निर्वर्त्यत्व समाप्त नहीं होता है। और यदि वह समाप्त हो जाता है तो फिर प्रकृति के लिए 'सती वा, असति वा विशेषणों का प्रयोग करना अनर्थक है। 'संयोगं करोति' में 'संयोग' कर्म में उपादान–कारणाभाव वर्णित किया गया है, उस विषय में

शिवरामेन्द्र का कथन है कि 'संयोग' का भी उपादानकारण होता है। अतः कैय्यट की यह व्याख्या खण्डनीय है।[11]

कैय्यट ने 'विकार्य भी दो प्रकार के होते हैं' यह प्रतिपादित किया है, यह भी खण्डनयोग्य है। इसके साथ जो भर्तृहरि की 'प्रकृत्युच्छेदसंभूतं0' इत्यादि कारिका उद्धृत की है वह भी स्वीकार नहीं की जा सकती है। क्योंकि प्रकृतिविकाररूप 'भस्मं करोति' तथा प्रकृतिगुणान्तररूप 'कुण्डले करोति' इत्यादि में भस्म व कुण्डलादि उत्पाद्यरूप होने से निर्वर्त्य कर्म हैं। इनमें विकार्यत्व का अभाव है। अतः उपरोक्त कैय्यट व भर्तृहरि का वर्णन खण्डित होता है।[12] इस तरह शिवरामेन्द्र ने इसविषय में कैय्यट के सम्पूर्ण व्याख्यान का खण्डन कर दिया है।

पाणिनि ने 'कर्म' को परिभाषित किया है। उनके अनुसार क्रिया के द्वारा कर्त्ता का ईप्सिततम 'कर्म' होता है।[13] कर्म का क्रिया से अभिन्न सम्बन्ध है। वस्तुतः 'कर्म' क्रिया की सिद्धावस्था या फल का अपरनाम है। क्रिया की निष्पत्ति अथवा निर्वृत्ति होने पर जो फल प्राप्त होता है, उसे 'निर्वर्त्य कर्म' कहते हैं। 'निर्वृत्तित्व' कर्म का प्रथम व प्रमुख लक्षण है। न्यासकार ने निर्वर्त्य कर्म के विषय में उल्लेख किया है कि वह अपनी उत्पत्ति से पूर्व अदृष्ट होता है किन्तु जन्म के उपरान्त दृष्टरूप को प्राप्त करता है। यथा–'कटं करोति' यहाँ 'कट' अपने जन्म से पूर्व अदृष्ट होती है।[14]

क्रिया का फल होने से 'कर्म' को 'कार्य' भी कहते है। कार्य विना 'कारण' के उत्पन्न नहीं होता है। तर्कभाषा के अनुसार कारण कार्य से पूर्वभावी, नियत एवं अनन्यथा सिद्ध होता है।[15] केशवमिश्र ने समवायि, असमवायि व निमित्तभेद से 'कारण' के तीन प्रकार बताये हैं। भर्तृहरि ने 'प्रकृति' पद कारण के अर्थ में प्रयुक्त किया है तथा कारण भी समवायि या उपादानकारण ज्ञेय है।[16]

कार्यकारण को एक अन्यप्रकार से परिणाम एवं परिणामिनी भी कहते हैं। प्रकृत में प्रकृति, परिणामिनी, कारण यह एक समूह है। जबकि कर्म, परिणाम, कार्य यह दूसरा समूह ज्ञातव्य है।

यदि विकार्य कर्म का विवेचन किया जाये तो न्यासकार के शब्दों में जो विद्यमान रहते हुये अवस्थान्तर को प्राप्त करता है जैसे– काष्ठानि भस्मीकरोति। यहाँ 'काष्ठ' अपने कारणों से पूर्व में ही जन्म पाकर विद्यमान रहती है, यहाँ निर्वर्त्यत्व विद्यमान है केवल उसकी 'भस्म' नामक अवस्था बदलती है।[17] 'भस्मं करोति' में द्रव्यान्तररूप विकार के कारण यहाँ 'भस्मं' विकार्य कर्म है। यहाँ एक तथ्य विशेषरूप से द्रष्टव्य है कि 'विकार्यत्व' में निर्वर्त्यत्व समन्वित रहता है।

भर्तृहरि प्रकृति के उच्छेद से उत्पन्न पदार्थ को 'विकार' मानते हैं तथा इसके दो भेद स्वीकार करते हैं क– पदार्थान्तर ख– गुणान्तर। प्रथम में प्रकृति का उच्छेद होता है यथा– 'काष्ठं भस्मं करोति', तथा द्वितीय में प्रकृति विद्यमान रहते हुये उसका गुणान्तर हो जाता है यथा 'सुवर्णं कुण्डलं करोति। इसके अतिरिक्त भर्तृहरि को प्रकृति की विवक्षा होने पर भी विकार्य अभीष्ट है।[18] उपादानकारण से भिन्न निमित्त या सामान्यकारण माने जाते है।[19] इनके मध्य समवाय सम्बन्ध न होकर संयोगसंम्बन्ध होता है। यथा– पट कार्य के प्रति तुरी, वेमादि में संयोगसम्बन्ध है।

नारायणीयम् के अनुसार – संयोगं करोति में संयोगसम्बन्धादि गौण कारण युक्त हैं अतः उसमें उपादानादि कारणों का अभाव है।[20]

अतः यदि कैय्यट की व्याख्या की समीक्षा की जाये तो उनकी व्याख्या सर्वथा समीचीन प्रतीत होती है। भर्तृहरि के प्रमाण से पोषित होने के कारण वह सर्वथा आदरणीय है।

'अविद्यमाना प्रकृति' के उदाहरण में कैय्यट की व्याख्या उपादानकारणरूप प्रकृति की विद्यमानता का अभाव है यह तात्पर्य है अपितु यह अर्थ नहीं है कि 'संयोगं करोति' में सर्वथा प्रकति का अभाव है। संयोग सम्बन्ध पर आधारित निमित्तकारण तो विद्यमान है ही। गौणप्रकृति की दृष्टि से अविद्यमानता समझनी चाहिए।

जहाँ तक शिवरामेन्द्र सरस्वती की व्याख्या का प्रश्न है वह एक सामान्य व्याख्या है जिसमें किसी विशेष तथ्य का उद्घाटन नहीं किया गया है। उनके खण्डन भी अतार्किक हैं क्योंकि 'सती' 'असती' विशेषण उपादानकारण की अपेक्षा से परिणामिनी प्रकृति में संलग्न है।

मृदादि उपादानकारण का अभिन्नरूप से विवक्षित होने से घटादि का निर्वर्त्यत्व समाप्त नहीं होता है अपितु वह गौण हो जाता है तथा विकार्यत्व की विवक्षा का प्राधान्य हो जाता है। अतएव 'मृदं घटं करोति' में घट विकार्यकर्म के रूप में व्यपदिष्ट होता है। शिवरामेन्द्र सरस्वती ने 'संयोगं करोति' में उपादानकारण की सत्ता का कथन किया है, उसका नामतः उल्लेख उनके द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए था।

'भस्मं' में द्रव्यान्तररूप एवं कुण्डल में गुणान्तररूप विकार्यत्व का प्राधान्य है तथा निर्वर्त्यत्व गौणरूप से विद्यमान ही है। अतः शिवरामेन्द्र के द्वारा गौण निर्वर्त्यत्व के आधार पर विकार्यत्वाभाव का कथन उचित प्रतीत नहीं होता है। अतः शिवरामेन्द्र के द्वारा कैय्यट सह भर्तृहरि का खण्डन अतात्विक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पा0सू0–3–2–1।
2. इह मा भूत् – आदित्यं पश्यति, हिमवन्तं श्रृणोति, ग्रामं गच्छतीति। महा0–3–2–।
3. वाक्यपदीयम्–
4. यस्योपादानकारणं नास्ति तन्निर्वर्त्यं यथा – 'संयोगं करोती'ति। प्रदीप–3–2–।
5. यस्यापि सदप्युपादानकारणं न विवक्ष्यते तन्निर्वर्त्यं, यथा घटं करोती'ति। प्रदीप वहीं।
6. यदा तूपादानकारणमेव परिणामित्वेन विवक्ष्यते – 'मृदं घटं करोती'ति, तदा विकार्यं कर्म। प्रदीप,वहीं।
7. भेदविवक्षायां तु 'मृदा घटं करोती'ति निर्वर्त्यमेव कर्म। प्रदीप, वहीं।
8. विक्रियते विकारात्मकतां प्राप्यत इति विकार्यमित्यवयवार्थानुगतिस्तत्र द्रष्टव्या। रत्नप्रकाश वहीं।
9. 'भेरीमाहन्ति, वीणां वादयति' इत्यादावपि भेरीवीणादीनां ध्वनिविशेषयुक्ततया विकारात्मकता प्राप्तिर्ज्ञेया। रत्नप्रकाश, वहीं।
10. एतेन 'सतीवाऽविद्यमाना वा.....घटं करोतीति निर्वर्त्यमेव' इति तद्व्याख्यानं च निरस्तम्। रत्नप्रकाश, वहीं।
11. परिणामिन्याःप्रकृतेराश्रीयमाणत्वेऽपि घटादेर्निर्वर्त्यत्वानपायेन 'सतीवा,असती वा' इत्यादिविशेषणस्यानर्थक्यात्, संयोगस्याप्युपादानकारणस्य सत्वाच्च। रत्नप्रकाश,वहीं।
12. यदप्युक्तम्– ''विकार्यमपि द्विविधम्–'प्रकृत्युच्छेदसंभूतं..... सुवर्णादिविकारवत् '' इति। तदपि न, 'भस्म करोति, कुण्डले करोति' इत्यादौ भस्मकुण्डलादेर्निर्वर्त्यत्वेन विकार्यत्वाभावात्। रत्नप्रकाश, वहीं।
13. कर्तुरीप्सिततमं कर्म । पा0सू0– 1–4–49।
14. तत्र निर्वर्त्यं यदसदेवोत्पाद्यते, यस्य जन्म क्रियते, तन्निर्वर्त्यम्, यथा – कटं करोति, कटो ह्यसन्नेव क्रियते । न्यास –1–4–49।
15. यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च तत्कारणम्। तर्कभाषा– कारणलक्षण।
16. 'उपादानकारणम्' इत्यनेन प्रकृतिशब्दो व्याख्यातः। नारायणीयम्, वहीं।
17. विकार्यं यल्लब्धसन्ताकमवस्थान्तरमापद्यते, यथा– काष्ठानि भस्मीकरोति। नात्र काष्ठान्यसन्त्येव जन्यन्ते, कारणान्तरेभ्यः प्रागेवोत्पन्नत्वात्, उत्पन्नानि तु केवलं भस्माख्यामवस्थामापाद्यन्ते। न्यास, वहीं।

18. प्रकृतेस्तु विवक्षायां विकार्यम्। वाक्य0 –3–7–48।
19. अथ च कारणं तन्निमित्तकारणम् । यथा वेमादिकं पटस्य कारणम्। तर्कभाषा।
20. संयोगविभागादेर्गुणत्वादुपादानकारणाभावः । नारायणीयम्।